महाजनी सभ्यता

मुज़दः ए दिल कि मसीहा नफ़स से मी आयद;
कि जे अनफास खुशश बूए कसे मी आयद।[1]

जागीरदारी सभ्यता में बलवान् भुजाएँ और मजबूत कलेजा जीवन की आवश्यकताओं में परिगणित थे, और साम्राज्यवाद में बुद्धि और वाणी के गुण तथा मूक आज्ञापालन उसके आवश्यक साधन थे; पर उन दोनों स्थितियों में दोनों के साथ कुछ गुण भी थे। मनुष्य के अच्छे भाव लुप्त नहीं हो गये थे। जागीरदार अगर दुश्मन के खून से अपनी प्यास बुझाता था, तो अकसर अपने किसी मित्र या उपकारक के लिए जान की बाजी भी लगा देता था। बादशाह अगर अपने हुक्म को कानून समझता था और उसकी अवज्ञा को कदापि सहन न कर सकता था, तो प्रजा-पालन भी करता था, न्यायशील भी होता था। दूसरे के देश पर चढ़ाई वह या तो किसी अपमान-अपकार का बदला फेरने के लिए करता था या अपनी आन-बान रोब-दाब कायम रखने के लिए या फिर देश-विजय और राज्य-विस्तार की वीरोचित महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित होता था। उसकी विजय का उद्देश्य प्रजा का खून चूसना कदापि न होता था। कारण यह है कि राजा और सम्राट जन-साधारण को अपने स्वार्थसाधन और धन शोषण की भट्ठी या ईंधन समझते थे; किन्तु उनके दुःख-सुख में शरीक होते थे और उनके गुण की कद्र करते थे।

मगर इस महाजनी सभ्यता में सारे कामों की गरज महज पैसा होती है। किसी देश पर राज्य किया जाता है, तो इसलिए कि महाजनों, पूँजीपतियों को ज्यादा-से-ज्यादा नफा हो। इस दृष्टि से मानो आज दुनिया में महाजनों का ही राज्य है। मनुष्य-समाज दो भागों में बँट गया है। बड़ा हिस्सा तो मरने और खपने वालों का है, और बहुत ही छोटा हिस्सा उन लोगों का, जो अपनी शक्ति और प्रभाव से बड़े समुदाय को अपने वश में किये हुए हैं। इन्हें इस बड़े भाग के साथ किसी तरह की हमदर्दी नहीं, जरा भी रूरियायत नहीं। उसका अस्तित्व केवल इसलिए है कि अपने मालिकों के लिए पसीना बहाये, खून गिराये और एक दिन चुपचाप इस दुनिया से विदा हो जाय। अधिक दुःख की बात तो यह है कि शासक वर्ग के विचार और सिद्धान्त शासित वर्ग के भीतर भी समा गये हैं; जिसका फल यह हुआ है कि हर आदमी अपने को शिकारी समझता है और उसका शिकार है समाज। वह खुद समाज से बिलकुल अलग है, अगर कोई सम्बन्ध है, तो यह कि किसी चाल या युक्ति से वह समाज को उल्लू बनाये और उससे

---

१. हृदय तू प्रसन्न हो कि पीयूषपाणि मसीहा ससतोर तेरी ओर आ रहा है। देखता नहीं कि लोगों की साँसों से किसी की सुगन्धि आ रही है।

जितना लाभ उठाया जा सकता हो, उठा लें।

धन-लोभ ने मानव भावों को पूर्ण रूप से अपने अधीन कर लिया है। कुलीनता और शराफत, गुण और कमाल की कसौटी पैसा, और केवल पैसा है। जिसके पास पैसा है, वह देवता स्वरूप है, उसका अन्तःकरण कितना ही काला क्यों न हो। साहित्य, संगीत और कला—सभी धन की देहली पर माथा टेकने वालों में हैं। यह हवा इतनी जहरीली हो गयी है कि इसमें जीवित रहना कठिन होता जा रहा है। डाक्टर और हकीम है कि वह बिना लम्बी फीस लिये बात नहीं करता। वकील और बैरिस्टर है कि वह मिनटों को अशर्फियों से तौलता है। गुण और योग्यता की सफलता उसके आर्थिक मूल्य के हिसाब से मानी जा रही हैं। मौलवी साहब और पंडितजी भी पैसे वालों के बिना पैसे के गुलाम हैं। अखबार उन्हीं का राग अलापते हैं। इस पैसे ने आदमी के दिलोदिमाग पर इतना कब्जा जमा लिया है कि उसके राज्य पर किसी ओर से भी आक्रमण करना कठिन दिखाई देता है। वह दया और स्नेह, सच्चाई और सौजन्य का पुतला मनुष्य दया-ममता-शून्य जड़यंत्र बन कर रह गया है। इस महाजनी सभ्यता ने नये-नये नीतिनियम गढ़ लिए हैं जिन पर आज समाज की व्यवस्था चल रही है। उसमें से एक यह है कि समय ही धन है। पहले समय जीवन था और उसका सर्वोत्तम उपयोग विद्या कला का अर्जन अथवा दीन-दुखी जनों की सहायता था। अब उसका सबसे बड़ा सदुपयोग पैसा कमाना है। डाक्टर साहब हाथ मरीज की नब्ज पर रखते हैं और निगाह घड़ी की सुई पर। उसका एक-एक मिनट एक-एक अशर्फी है। रोगी ने अगर केवल एक अशर्फी नजर की है, तो वह उसे मिनट से ज्यादा वक्त नहीं दे सकते। रोगी अपनी दुःख-गाथा सुनाने के लिए बेचैन है पर डाक्टर साहब का उधर बिलकुल ध्यान नहीं। उन्हें उससे जरा भी दिलचस्पी नहीं। उनकी निगाह में उस व्यक्ति का अर्थ केवल इतना ही है कि वह उन्हें फीस देता है। वह जल्द से जल्द नुस्खा लिखेंगे और दूसरे रोगी को देखने चले जायेंगे। मास्टर साहब पढ़ाने आते हैं, उनका एक घंटा वक्त बँधा है। वह घड़ी सामने रख लेते हैं, जैसे ही घंटा पूरा हुआ, वह उठ खड़े हुए। लड़के का सबक अधूरा रह गया है तो रह जाय, उनकी बला से वह घंटे से अधिक समय कैसे दे सकते हैं, क्योंकि समय रुपया है। इस धन-लोभ से मनुष्यता और मित्रता नाम शेष कर डाला है। पति को पत्नी या लड़कों से बात करने की फुर्सत नहीं, मित्र और सम्बन्धी किस गिनती में हैं। जितनी देर वह बातें करेगा, उतनी देर में तो कुछ कमा लेगा। कुछ कमा लेना ही जीवन की सार्थकता है, शेष सब कुछ समय-नाश है। बिना खाये-सोये काम नहीं चलता, बेचारा इससे लाचार है और इतना समय नष्ट करना ही पड़ता है।

आपका कोई मित्र या सम्बन्धी अपने नगर में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है, तो समझ लीजिए, उसके यहाँ अब आपकी रसाई मुमकिन नहीं। आपको उसके दौलत घर जाकर कार्ड भोजना होगा। उन महाशय को बहुत से काम होंगे, मुश्किल से आपसे एक-दो बातें करेंगे या साफ जवाब दे देंगे कि आज फुर्सत नहीं है। अब वह पैसे के

Scanned with CamScanner

पुजारी हैं, मित्रता और शीलसंकोच के नाम पर कब की तिलांजलि दे चुके हैं।

आपका कोई दोस्त वकील है और आप किसी मुकदमे में फँस गये हैं, तो उससे किसी तरह की सहायता की आशा न रखिये। अगर वह मुरौवत को गंगा में डुबो नहीं चुका है तो आपसे लेन-देन की बात शायद न करेगा, पर आपके मुकदमे की ओर तनिक भी ध्यान न देगा। इससे तो कहीं अच्छा है कि आप किसी अपरिचित के पास जाएँ और उसकी पूरी फ़ीस अदा करें। ईश्वर न करे कि आज किसी को किसी चीज में कमाल हासिल हो जाय, फिर उसमें मनुष्यता नाम को न रह जायेगी; उसका एक-एक मिनट कीमती हो जायेगा।

इसका अर्थ यह नहीं कि व्यर्थ की गपशप में समय नष्ट किया जाय, पर यह अर्थ अवश्य है कि धन-लिप्सा को इतना बढ़ने न दिया जाय कि वह मनुष्यता, मित्रता, स्नेह-सहानुभूति सबको निकाल बाहर करे।

पर आज उस पैसे के गुलाम को बुरा नहीं कह सकते। सारी दुनिया जिस प्रवाह में बह रही है, वह भी उसी में बह रहा है। मान-प्रतिष्ठा सदा से मानवीय आकांक्षाओं का लक्ष्य रहा है। जब विद्या-कला मान-प्रतिष्ठा का साधन थी, उस समय लोग इन्हीं का अर्जन अभ्यास करते थे। जब धन उसका एकमात्र उपाय है, तब मनुष्य मजबूर है कि एकनिष्ठ भाव से उसी की उपासना करे। वह कोई साधु-महात्मा, संन्यासी-उदासी नहीं; वह देख रहा है कि उसके पेशे में जो सौभाग्यशाली सफलता की कठिन यात्रा पूरी कर सके हैं, वह उसी राजमार्ग के पथिक थे, जिस पर वह खुद चल रहा है। समय धन है एक सफल व्यक्ति का। वह इस सिद्धान्त का अनुसरण करते देखता है, फिर वह भी उसी के पद-चिह्नों का अनुसरण करता है, तो उसका क्या दोष? मान-प्रतिष्ठा की लालसा तो दिल से मिटायी नहीं जा सकती। वह देख रहा है कि जिसके पास दौलत नहीं और इसीलिए नहीं कि उन्होंने वक्त को दौलत नहीं समझा, उनको कोई पूछने वाला नहीं। वह अपने पेशे में उस्ताद है फिर भी उसकी कहीं पूछ नहीं। जिस आदमी में तनिक भी जीवन की आकांक्षा है वह तो इस उपेक्षा की स्थिति को सहन नहीं कर सकता। उसे तो मुरौवत, दोस्ती और सौजन्य को धता बतला कर लक्ष्मी की आराधना में अपने को लीन कर देना होगा, तभी इस देवी का वरदान उसे मिलेगा, और यह कोई इच्छाकृत कार्य नहीं किन्तु सर्वथा बाध्यकारी है। उसके मन की अवस्था अपने आप कुछ इस तरह की हो गयी है कि उसे धनार्जन के सिवा और किसी काम से लगाव नहीं रहा। अगर उसे किसी सभा या व्याख्यान में आधा घण्टा बैठना पड़े; तो समझ लो, वह कैद की घड़ी काट रहा है। उसकी सारी मानसिक, भागवत और सांस्कृतिक दिलचस्पियाँ इसी केन्द्र बिन्दु पर एकत्र हो गयी हैं और क्यों न हों? वह देख रहा है कि पैसे के सिवा उसका और कोई अपना नहीं। स्नेही मित्र भी अपनी गरज लेकर ही उसके पास आते हैं, स्वजन-संबंधी भी उसके पैसे के ही पुजारी हैं। वह जानता है कि अगर वह निर्बल होता, तो वह जो दोस्तों का जमघट लग रहा है, उनमें से एक के भी दर्शन न होते, इन स्वजन-सम्बंधियों में से एक भी पास न

Scanned with CamScanner

फटकता। उस समाज में अपनी एक हैसियत बनानी है, बुढ़ापे के लिए कुछ बचाना है, लड़कों के लिए कुछ कर जाना है जिसमें उन्हें दर-दर की ठोकरें न खानी पड़ें। इस निष्ठुर, सहानुभूति-शून्य दुनिया का उसे पूरा अनुभव है। अपने लड़कों को वह उन कठिन अवस्थाओं में नहीं पड़ने देना चाहता जो सारी आशाओं-उमंगों पर पाला गिरा देती है, हिम्मत हौसले को तोड़कर रख देती है। उसे वह सारी मंजिलें जो एक साथ जीवन के आवश्यक अंग हैं, खुद तय करनी होंगी और जीवन को व्यापार के सिद्धान्तों पर चलाये बिना वह इनमें से एक भी मंजिल पार नहीं कर सकता।

इस सभ्यता का दूसरा सिद्धांत है 'बिज़नेस इज बिज़नेस' अर्थात् व्यवसाय व्यवसाय है, उसमें भावुकता के लिए गुंजाइश नहीं। पुराने जीवन-सिद्धांत में वह लट्ठमार साफगोई नहीं है, जो निर्लज्जता कही जा सकती है और जो इस नवीन सिद्धांत की आत्मा है। जहाँ लेन-देन का सवाल है, रुपये-पैसे का मामला है, वहाँ न दोस्ती का गुजर है, न मुरौवत का, न इन्सानियत का। 'बिज़नेस' में दोस्ती कैसी। जहाँ किसी ने इस सिद्धांत की आड़ ली और लाजवाब हुए। फिर आपकी जबान नहीं खुल सकती। एक सज्जन जरूरत से लाचार होकर अपने किसी महाजन मित्र के पास जाते हैं और चाहते हैं कि वह उनकी कुछ मदद करें। यह भी आशा रखते हैं कि शायद सूद के दर में वह कुछ रियायत कर दें; पर जब देखते हैं कि यह महानुभाव मेरे साथ भी बड़ा कारबारी बर्त्ताव कर रहे हैं, तो कुछ रियायत की प्रार्थना करते हैं, मित्रता और घनिष्ठता के आधार पर आँखों में आँसू भरकर बड़े करुण स्वर में कहते हैं—महाशय, मैं इस समय बड़ा परेशान हूँ, नहीं तो आपको कष्ट नहीं देता, ईश्वर के लिए मेरे हाल पर रहम कीजिये। समझ लीजिये कि एक पुराने दोस्त...। वहीं बात काट कर आशा के स्वर में फरमाया जाता है, लेकिन जनाब, आप 'बिज़नेस इज बिज़नेस' इसे भूल जाते हैं। उस दिन कातर प्रार्थी पर मानो बम का गोला गिरा। अब उसके पास कोई तर्क नहीं, कोई दलील नहीं। चुपके से उठकर अपनी राह लेता है या फिर अपने व्यवसाय-सिद्धांत के भक्त मित्र की सारी शर्तें कबूल कर लेता है।

इस महाजनी सभ्यता ने दुनिया में जो नयी रीति-नीतियाँ चलायी हैं उनमें सबसे अधिक और रक्तपिपासु यहीं व्यवसाय वाला सिद्धान्त है। मियाँ-बीबी में बिज़नेस, बाप-बेटे में बिज़नेस, गुरु-शिष्य में बिज़नेस! सारे मानवी, आध्यात्मिक और सामाजिक नेह-नाते समाप्त। आदमी-आदमी के बीच बस कोई लगाव है, तो बस बिज़नेस का। लानत है इस बिज़नेस पर। लड़की अगर दुर्भाग्यवश क्वाँरी रह गयी और अपनी जीविका का कोई उपाय न निकाल सकी, तो अपने बाप के घर में ही लौंडी बन जाना पड़ता है। यों लड़के-लड़कियाँ सभी घरों में काम-काज करते ही हैं, पर उन्हें कोई टहलुआ नहीं समझता; पर इस महाजनी सभ्यता में लड़की एक खास उम्र के बाद लौंड़ी और अपने भाइयों की मजदूरनी हो जाती है। पूज्य पिताजी भी अपने पितृ-भक्त बेटे के टहलुए बन जाते हैं और माँ अपने सपूत की टहलुई। स्वजन-सम्बन्धी तो किसी गिनती में नहीं। भाई भी भाई के घर आये तो मेहमान है। अकसर तो उसे

Scanned with CamScanner

मेहमानों का बिल भी चुकाना पड़ता है। इस सभ्यता की आत्मा है व्यक्तिवाद। आप स्वार्थी बनें। सब कुछ अपने लिए।

पर यहाँ भी हम किसी को दोषी नहीं ठहरा सकते। वही मान-प्रतिष्ठा, वही भविष्य की चिन्ता, वही अपने बाद बीबी-बच्चों के गुजर का सवाल, वही नुमाइश और दिखावे की आवश्यकता हर एक की गरदन पर सवार है, और वह हिल नहीं सकता। वह इस सभ्यता के नीति-नियमों का पालन न करे तो उसका भविष्य अन्धकारमय है।

अब तक दुनिया के लिए इस सभ्यता की रीति-नीति का अनुसरण करने के सिवा और कोई उपाय न था। उसे झक मारकर उसके आदेशों के सामने सिर झुकाना पड़ता था। महाजन अपने जोम में फूला फिरता था। सारी दुनिया उसके चरणों पर नाक रगड़ रही थी। बादशाह उसका बंदा, वजीर उसके गुलाम, सन्धिविग्रह की कुंजी उसके हाथ में, दुनिया उसकी महत्वाकांक्षाओं के सामने सिर झुकाये हुए, हर मुल्क में उसका कोलबाला।

परन्तु अब एक नयी सभ्यता का सूर्य सुदूर पश्चिम से उदय हो रहा है, जिसने इस नाटकीय महाजनवाद या पूँजीवाद की जड़ खोदकर फेंक दी है, जिसका मूल सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक व्यक्ति, जो अपने शरीर या दिमाग से मेहनत करके कुछ पैदा कर सकता है, राज्य और समाज का परम सम्मानित सदस्य हो सकता है, और जो केवल दूसरों की मेहनत या बाप-दादों के जोड़े हुए धन पर रईस बना फिरता है, वह पतिततम प्राणी है। उसे राज्य-प्रबन्ध में राय देने का हक नहीं और वह नागरिकता के अधिकारों का भी पात्र नहीं। महाजन इस नयी लहर से अति उद्विग्न होकर बौखलाया हुआ फिर रहा है और सारी दुनिया के महाजनों की शामिल आवाज इस नयी सभ्यता को कोस रही है, उसे शाप दे रही है। व्यक्ति स्वातंत्र्य, धर्म विश्वास की स्वाधीनता अपनी अन्तरात्मा के आदेश पर चलने की आजादी वह इन सबकी घातक, गला घोंट देनेवाली बतायी जा रही है। उस पर नये-नये लांछन लगाये जा रहे हैं नयी-नयी हुरमतें तराशी जा रही हैं। वह काले से काले रंग में रंगी जा रही है। कुत्सित रूप में चित्रित की जा रही है। उन सभी साधनों से जो पैसेवालों के लिए सुलभ हैं, काम लेकर उनके विरुद्ध प्रचार किया जा रहा है; पर सच्चाई है जो इस सारे अंधकार को चीर कर दुनिया में अपनी ज्योति का उजाला फैला रही है।

निस्सन्देह इस नयी सभ्यता ने व्यक्ति-स्वातंत्र्य के पंजे, नाखून और दाँत तोड़ दिये हैं। उसके राज्य में अब एक पूँजीपति लाखों मजदूरों का खून पाकर मोटा नहीं हो सकता। उसे अब यह आजादी नहीं कि अपने नफे के लिए साधारण आवश्यकता की वस्तुओं के दाम चढ़ा सके, दूसरे अपने माल की खपत करने के लिए युद्ध करा दे, गोला-बारूद और युद्ध-सामग्री बनाकर दुर्बल राष्ट्रों का दमन कराये। अगर इसकी स्वाधीनता ही स्वाधीनता है तो निस्सन्देह नयी सभ्यता में स्वाधीनता नहीं; पर यदि स्वाधीनता का अर्थ यह है कि जनसाधारण को हवादार मकान, पुष्टिकर भोजन, साफ-

सुथरे गाँव, मनोरंजन और व्यायाम की सुविधाएँ, बिजली के पंखे और रोशनी, सस्ता और सद्य: सुलभ न्याय की प्राप्ति हो, तो इस समाज-व्यवस्था में जो स्वाधीनता और आज़ादी है, वह दुनिया की किसी सभ्यतम कहलाने वाली जाति को भी सुलभ नहीं है, धर्म की स्वतन्त्रता का अर्थ अगर पुरोहित, पादरियों, मुल्लाओं की मुफ्तखोर जमात के दंभमय उपदेशों और अंधविश्वास-जनित रूढ़ियों का अनुसरण है, तो निस्सन्देह वहां इस स्वातंत्र्य का अभाव है, पर धर्म स्वातंत्र्य का अर्थ यदि लोकसेवा, सहिष्णुता, समाज के लिए व्यक्ति का बलिदान, नेकनीयती, शरीर और मन की पवित्रता है, तो इस सभ्यता में धर्माचरण की स्वाधीनता है और किसी देश को उसके दर्शन भी नहीं हो सकते।

जहाँ धन की कमी-बेशी के आधार पर असमानता है वहां ईर्ष्या, जोर-ज़बर्दस्ती, बेइमानी, झूठ, मिथ्या, अभियोग-आरोप, वेश्या-वृत्ति, व्यभिचार और सारी दुनिया की बुराइयाँ अनिवार्य रूप से मौजूद हैं। जहाँ धन का आधिक्य नहीं, अधिकांश मनुष्य एक ही स्थिति में हैं, वहाँ जलन क्यों हो और जब्र क्यों हो और सतीत्व-विक्रय क्यों हो और व्यभिचार क्यों हो? झूठे मुकदमे क्यों चलें और चोरी-डाके की वारदातें क्यों हों? वे सारी बुराइयाँ तो दौलत की देन हैं, पैसे के प्रसाद हैं। महाजनी सभ्यता ने इनकी सृष्टि की है। वही इनको पालती है और वही यह भी चाहती है कि जो दलित, पीड़ित और विजित हैं, वे इसे ईश्वरीय विधान समझ कर अपनी स्थिति पर संतुष्ट रहें। उनकी ओर से तनिक भी विरोध विद्रोह का भाव दिखाया गया, तो उनका सिर कुचलने के लिये पुलिस है, अदालत है, काला पानी है। आप शराब पीकर उसके नशे से बच नहीं सकते। आग लगाकर चाहें कि लपटें न उठें, असम्भव है। पैसा अपने साथ यह सारी बुराइयाँ लाता है, जिन्होंने दुनिया को नरक बना दिया। इस पैसा-पूजा को मिटा दीजिए, सारी बुराइयाँ अपने आप मिट जाएँगी। जड़ न खोद कर केवल फुनगी की पत्तियाँ तोड़ना बेकार है। यह नयी सभ्यता धनाढ्यता को हेय और लज्जा-जनक तथा घातक विष समझती है। वहाँ कोई आदमी अमीर ढंग से रहे तो लोगों की ईर्ष्या का पात्र नहीं होता, बल्कि तुच्छ और हेय समझा जाता है। गहनों से लदकर कोई स्त्री सुन्दर नहीं बनती, घृणा की पात्र बनती है। साधारण जन-समाज से ऊँचा रहन-सहन रखना वहाँ बेहूदगी समझी जाती है। शराब पी कर वहाँ बहका नहीं जा सकता, अधिक मद्यपान वहाँ दोष समझा जाता है, धार्मिक दृष्टि से नहीं, किन्तु शुद्ध सामाजिक दृष्टि से; क्योंकि शराबखोरी से आदमी में धैर्य और कष्ट सहन, अध्यवसाय और श्रमशीलता का अन्त हो जाता है।

हाँ, इस समाज-व्यवस्था ने व्यक्ति को यह स्वाधीनता नहीं दी है कि वह जनसाधारण को अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की तृप्ति का साधन बनाये और तरह-तरह के बहानों से उनकी मेहनत का फ़ायदा उठाये या सरकारी पद प्राप्त करके मोटी-मोटी रकमें उड़ाये और मूँछों पर ताव देता फिरे। वहाँ ऊँचे से ऊँचे अधिकारी की तनख्वाह भी उतनी ही है, जितनी एक कुशल कारीगर की। वह गगनचुम्बी प्रासादों में नहीं

Scanned with CamScanner

रहता, तीन-चार कमरों में ही उसे गुजर करना पड़ता है। उसकी श्रीमती जी रानी साहबा या बेगम बनी हुई स्कूलों में इनाम बाँटती नहीं फिरतीं; बल्कि अक्सर मेहनत-मजदूरी या किसी अखबार के दफ्तर में काम करती हैं। सरकारी पद पाकर वह अपने को लाट साहब नहीं बल्कि जनता का सेवक समझता है। महाजनी सभ्यता का प्रेमी इस समाज-व्यवस्था को क्यों पसन्द करने लगा जिसमें उसे दूसरों पर हुकूमत जताने के लिए सोने-चाँदी के ढेर लगाने की सुविधाएँ नहीं? पूँजीपति और जमींदार तो इस सभ्यता की कल्पना से ही काँप उठते हैं। उनकी जुड़ी का कारण हम समझ सकते हैं। पर जब वह लोग भी उसकी खिल्ली उड़ाने और उस पर फ़बतियाँ कसने लगते हैं, जो अनजान में महाजनी सभ्यता का उल्लू सीधा कर रहे हैं, तो हमें उनकी दास-मनोवृत्ति पर हँसी आती है। जिसमें मनुष्यता, आध्यात्मिकता, उच्चता और सौन्दर्यबोध है, वह कभी ऐसी समाज-व्यवस्था की सराहना नहीं कर सकता, जिसकी नींव लोभ, स्वार्थपरता और दुर्बल मनोवृत्ति पर खड़ी हो। ईश्वर ने तुम्हें विद्या और कला की संपत्ति दी है, तो उसका सर्वश्रेष्ठ उपयोग यही है कि उसे जन-समाज की सेवा में लगाओ, यह नहीं कि उससे जन-समाज पर हुकूमत चलाओ, उसका खून चूसो और उल्लू बनाओ।

धन्य है वह सभ्यता, जो मालदारी और व्यक्तिगत संपत्ति का अन्त कर रही है, और जल्दी या देर से दुनिया उसका पदानुसरण अवश्य करेगी। यह सभ्यता अमुक देश की समाज-रचना अथवा धर्म-मजहब से मेल नहीं खाती या उस वातावरण के अनुकूल नहीं है—यह तर्क नितांत असंगत है। ईसाई मजहब का पौधा यरुशलम में उगा और सारी दुनिया उसके सौरभ से बस गयी। बौद्ध-धर्म ने उत्तर-भारत में जन्म ग्रहण किया और आधी दुनिया ने उसे गुरुदीक्षणा दी। मानव-समाज अखिल विश्व में एक ही है। छोटी-मोटी बातों में अन्तर हो सकता है; पर मूलस्वरूप की दृष्टि से सम्पूर्ण मानव जाति में कोई भेद नहीं। जो शासन-विधान और समाज-व्यवस्था एक देश के लिये कल्याणकारी है, वह दूसरे देशों के लिए भी हितकर होगी। हाँ, महाजनी सभ्यता और उसके गुर्गे अपनी शक्ति भर उसका विरोध करेंगे, उसके बारे में भ्रमजनक बातों का प्रचार करेंगे, जन-साधारण को बहकायेंगे, उनकी आँखों में धूल झोंकेंगे; पर जो सत्य है एक न एक दिन उसकी विजय होगी और अवश्य होगी। ■

Scanned with CamScanner

प्रेमचंद का उपन्यास सेवा सदन और स्त्री विमर्श

● रणजीत कुमार सिन्हा

***

डॉ. रणजीत कुमार सिन्हा
जन्म १ जनवरी १९९२ खड़गपुर (प.बं.) शिक्षा एमए (हिन्दी, समाजशास्त्र)। आधुनिक हिन्दी के शताब्दी पुरूष, भूमंडलीकरण और हिन्दी साहित्य आलोचनात्मक कृतियों का प्रकाशन। एक कविता संग्रह 'जहाँ अभी रहता हूँ' प्रकाशित १०० से अधिक लेख, आलेख, शोध पत्र पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।।

***

भारतीय समाज में स्त्री समस्या या स्त्री विमर्श पर चिंतन करते समय हमें प्रेमचंद का सेवा सदन पर विचार करना जरूरी है। प्रेमचंद अपनी इस कृति में नारी समाज की समस्याओं से जितना अवगत कराते है, वह भारतीय समाज की स्त्री समस्या का दस्तावेज है। आज वर्तमान समय में वह समस्या किस रूप में हैं या भूमंडलीकरण, बाजारवाद, उदारीकरण के चलते इस समस्या में क्या बदलाव उत्तम है या और गम्भीर रूप में है यह देखना जरूरी है।

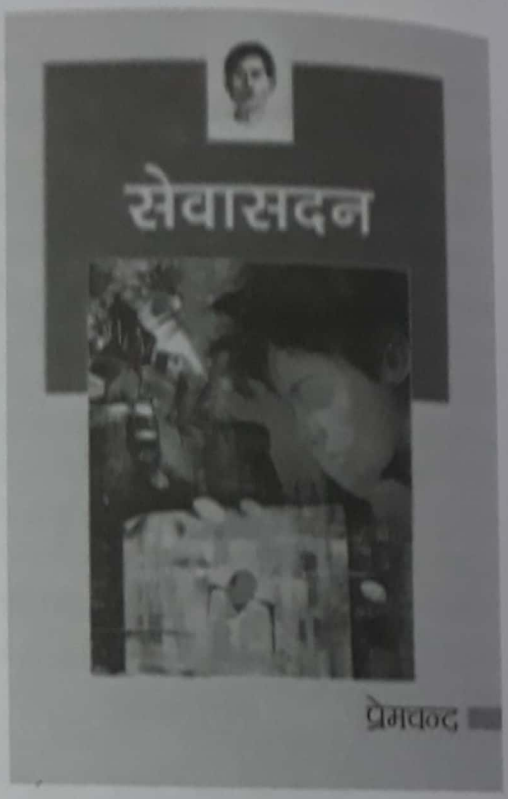

सेवा सदन उपन्यास का काल प्रथम विश्व युद्ध का समय है। उपन्यास में तत्कालीन समस्या पर जोर दिया गया है। इस उपन्यास को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद है। मूल समस्या इस उपन्यास में स्त्री की आर्थिक पराधीनता से है।

प्रेमचंद वेश्या प्रथा के तीन कारण बताते हैं- मनोविकार, आर्थिक हीनता और सामाजिक कुप्रथाएं। वह इन मूल कारणों का सुधार भी करना चाहते हैं। परंतु सम्पूर्ण सेवा सदन उपन्यास में किसी भी स्त्री का वेश्या जीवन अपनाते हुऐ उक्त कारणों से कोई भी संबंध नहीं है। प्रेमचंद यहाँ दिखलाते हैं कि नारी अगर वास्तविक शिक्षा को नहीं ग्रहण कर पाती है या नारी को अगर वास्तविक शिक्षा नहीं मिलती है तो उसके कितने दुष्परिणाम हो सकते हैं। सुमन ने गृहिणी बनने की नहीं इंद्रिय भोग की शिक्षा पाई थी। समाज का जो परंपरागत वर्ग धर्माचार्य, मठाधीश, धनपति और समाज सुधारक तथा देशानुराग संबंधी लंबी लंबी बाते करने वालों के दोहरे एवं खोखले चरित्र पर प्रेमचंद तीखा व्यंग्य करते हैं।

हमारा समाज किस तरह से मुखौटाधारी है जो दोहरी आचरण को अपनाया हुआ है। भोला बाई वेश्या है। वह धनपतियों के घरो के अतिरिक्त मठों में जाती है और वहाँ भी वह सम्मान पाती है। जबकि वह लोग व्यक्तिगत रूप से वेश्यावृत्ति की आलोचना करते हैं। समाज मे कितना दंभ है, मिथ्या वर्ग है, प्रेमचंद इसकी ओर भी संकेत देते हैं। सबसे अहम सवाल प्रेमचंद यहाँ उठाते हैं कि हिंदू समाज इस कुप्रथा को, कुप्रवृत्ति को दूर करने की व्यावहारिक बात नही कर सकता है। वर्तमान समय में नारी मुक्ति, स्त्री सशक्तिकरण स्त्री-विमर्श के नाम पर जो उपन्यास कहानियां आ रही हैं उसमे स्त्री को पुनः गुलाम ही नहीं वस्तु बनाने की गहरी साजिश है। आज तमाम नारी मुक्ति केंद्र के नाम पर एनजीओ खुले है जो नारी को देह व्यापार और बाजार का माल समझकर प्रस्तुत करनेमें लगे हैं।

सेवासदन उपन्यास में सुमन का पति उसे घर से निकाल देता है तो वह मजबूर होकर देह्यावृत्ति के कुमार्ग पर आती है। वह इसे अपना सौभाग्य समझती है। सुमन कहती है-"मेरा तो यह अनुभव है कि जितना आदर मेरा आज हो रहा उसका शतांश भी पहले नहीं होता था। एक बार तो सेठ विग्मन लाल के ठाकुर द्वारे में झूला देखने गयी थी, सारी रात बाहर खड़ी भीगती रही, किसी ने अंदर आने नहीं दिया,

Scanned with CamScanner

...लेकिन कल उसी ठाकुरद्वारे में मेरा जाना हुआ तो ऐसा जान पड़ता था, मानो मेरे चरणों से मंदिर पवित्र हो गया।"

आदर एवं निर्लज्जता के संबंध में कहे गये कथन गुप्त के सांसारिक ज्ञान के परिचायक है-आप चाहे समझते हों कि आदर और सम्मान की भूख बड़े आदमियों को ही होती है किंतु दीन दशा वाले व्यक्तियों को उसकी भूख और भी अधिक होती है क्योंकि उनके पास इनको प्राप्त करने का कोई साधन नहीं होता। वह इनके लिये चोरी, छल, कपट, सब कुछ कर बैठते हैं। आदर में वह संतोष है जो धन और भोग विलास में नहीं है। यहाँ आकर मुझे मालूम हो गया है कि निर्लज्जता सब कष्टों से दुरसह है। इस कष्ट से आत्मा का संहार हो जाता है।"

'सेवासदन' में प्रेमचंद वेश्याओं को समाज के मूल स्रोत में लाने के लिये गजानंद के माध्यम से अपने विचार प्रकट करते हुये कहते है-"ईश्वर वह दिन कब लावेगा कि हमारी जाति में स्त्रियों का आदर होगा, स्त्री मैले-कुचैले, फटे-पुराने वस्त्र पहनकर आभूषण विहीन होकर आधे पेट सूखी रोटी खाकर, झोपड़े में रहकर, मेहनत मजदूरी कर, सब कष्टों को सहते हुए भी आनंद से जीवन व्यतीत कर सकती है। केवल घर में उसका आदर होना चाहिये। आदर या प्रेम-विहीन महिला महलों में भी सुख से नहीं रह सकती है।"

यहाँ पर आदर शब्द का व्यापक अर्थ में प्रयोग किया गया है। प्रेमचंद सेवासदन में नारी को कुप्रथाओं या कुरीतियों से बाहर लाने का उपाय बताते हैं। जबकि आज के तथाकथित लेखक, संपादक, विमर्शकार स्त्री को आधुनिकता का तगमा लगाकर बाजार में परोसने का कार्य करते नजर आ रहे हैं। प्रेमचंद अपने रचनाओं में नारी स्वाधीनता की बात बार-बार उठाते हैं, लेकिन वे यौनमुक्ति, देहमुक्ति, दुराचरण को नहीं लाते, जबकि आज के अधिकतर लेखक, संपादक स्त्री की मुक्ति केवल सेक्स के रूप में मानते हैं। इसमें सबसे अधिक देहमुक्ति की कामना तथाकथित महिला लेखिकाओं के लेखन में है। नर और नारी दोनों एक दूसरे के परिपूरक हैं। दोनों के सहयोग से ही घर-परिवार सुखी होता है। दोनों का समाज में समान अधिकार है, लेकिन पुरुष और नारी के अंदर जो प्राकृतिक भेद है उसे भी स्वीकार करना जरूरी है। प्रेमचंद स्त्री के अधिकार को लेकर जितना सतर्क और तत्पर है शायद ही उनके समय का कोई कथाकार हुआ हो।

जीवन की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न वासनाओं का प्रभाव रहता है। बचपन मिठाईयों का समय है, बुढ़ापा लोभ का, यौवन प्रेम और लालसाओं का समय है, अवस्था में मीना बाजार की सैर मन में विप्लव मचा देती है, जो सुदृढ़ है, लज्जाशील है या भावशून्य-वह संयत पाते हैं शेष फिसलते हैं और गिर पड़ते हैं। (पेज-५६-५७)

भारत में नारी जागरण का वास्तविक उद्भव एवं विकास आधुनिक काल में है। आधुनिक काल स्त्रियों का युग है। पर्दा -प्रथा, बाल-विवाह, सती प्रथा जैसी कुरीतियों के विरूद्ध आवाज उठती है। नवजागरण के जनक राजाराम मोहनराय ने सती प्रथा जैसी अमानवीय प्रथा को सदा के लिये बंद कराया, आत्मीय सभा (१८१५) की स्थापना करके स्त्री शिक्षा का प्रसार किया। विद्यासागर ने विधवाओं के पुनर्विवाह पर जोर दिया। रमाबाई ने आर्य महिला समाज की स्थापना की। गाँधी जी ने स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया। हिंदी साहित्य में (१९०१-७०) तक का समय कविता कहानी एवं मोह भंग पर ही अधिक लेखन हुआ। जिसमें कुछ कथाकारों ने भारतीय नारी की दीन-हीन हालातों पर बेहतर ढंग से कलम चलाया। लेकिन जिस समता और सामाजिकता में बराबर की हकदार को लेकर यह आंदोलन पश्चिम में शुरू हुआ था भारत में वैसा न था।

भारतीय समाज में एक ओर जहाँ नारी को कुरीतियों से मुक्त होने के लिये स्त्री शिक्षा को आधुनिक रूप में प्रचारित-प्रसारित करने का काम हुआ, वहीं दूसरी ओर आठवे दशक तक आते-आते स्त्री को पुनः बाजार वस्तु बनाने की रणनीति भी दिखने लगी।

महादेवी वर्मा ने बहुत पहले लिखा था कि चरित्रहीन नारी को समाज कभी सहन नहीं करता पर चरित्रहीन पुरुष को लेकर कोई भेदभाव नहीं रखता है। "किसी भी पुरुष का कैसा भी चारित्रिक पतन हो उससे सामाजिकता का अधिकार नहीं छीन लेता, उसे गृह जीवन से निर्वासन नहीं देता, सुसंस्कृत व्यक्तियों में उसका प्रवेश निषिद्ध नहीं बनाता और धर्म से लेकर राजनीति तक सभी क्षेत्रों में ऊँचे-ऊँचे पदों तक पहुँचने का मार्ग नहीं रोक लेता। साधारणतः महान दुराचारी पुरुष की परम सती स्त्री के चरित्र की आलोचना ही नहीं न्यायकर्ता भी बना रहता है। (महादेवी शृंखला की कड़ियाँ)

समकालीन स्त्री पक्ष पर जो उपन्यास या कहानियाँ विगत चार दशक से देखने को मिल रही हैं, उसमें वह स्त्री मुक्ति को देह मुक्ति एवं स्त्री को उपभोग की वस्तु बनाने में ही व्यस्त है। स्त्री चाहे शिक्षित हो या अशिक्षित वह कहीं स्वयं इस बाजारू समाज में खुद को एक्सपोज करती नजर आ रही है, तो कहीं वह सामाजिक दिखावेपन की शिकार होती दिखती है।

अतः भारतीय समाज में स्त्री विमर्श पर बात भारतीय साहित्यकारों के नजरिये एवं भारतीय समाज की परम्पराओं एवं संस्कृतियों को देखकर ही करनी होगी। प्रेमचंद के उपन्यासों में भारतीय समाज के हर वर्ग,वर्ण की स्त्री की हालातों पर चर्चा है। सेवासदन की सुमन तो नैतिकता और स्वर्ग समान के चलते अपने गलत निर्णय पर अफसोस जाहिर करती है, लेकिन वर्तमान समय की नारी इसे अपना आधुनिक स्टेट्स मानती है। उपभोग ही, कुसंस्कार जीवन हो, बहुमर्द से संभाग एवं उतश्रृंखल जीवन को नैतिक मानती दिख रही है। इसके पीछे कुछ संपादकों, और खाती-पीती अघाती घर की लेखिकाओं की महती भूमिका है। ❑

खड़गपुर कॉलेज, इन्दा खड़गपुर
पश्चिम मिदनापुर-७२१३०५
मो. : ९४३४१५३५०१

Scanned with CamScanner

साहित्य का उद्देश्य

यह सम्मेलन हमारे साहित्य के इतिहास में स्मरणीय घटना है। हमारे सम्मेलनों और अंजुमनों में अब तक आम तौर पर भाषा और उसके प्रचार पर ही बहस की जाती रही है। यहाँ तक कि उर्दू और हिन्दी का जो आरम्भिक साहित्य मौजूद है, उसका उद्देश्य, विचारों और भावों पर असर डालना नहीं, किन्तु केवल भाषा का निर्माण करना था। वह भी एक बड़े महत्व का कार्य था। जब तक भाषा एक स्थायी रूप न प्राप्त कर ले, उसमें विचारों और भावों को व्यक्त करने की शक्ति ही कहाँ से आएगी? हमारी भाषा के 'पायनियरों' ने—रास्ता साफ़ करनेवालों ने—हिन्दुस्तानी भाषा का निर्माण करके जाति पर जो एहसान किया है, उसके लिए हम उनके कृतज्ञ न हों तो यह हमारी कृतघ्नता होगी।

भाषा साधन है, साध्य नहीं। अब हमारी भाषा ने वह रूप प्राप्त कर लिया है कि हम भाषा से आगे बढ़कर भाव की ओर ध्यान दें और इस पर विचार करें कि जिस उद्देश्य से यह निर्माण कार्य आरम्भ किया गया था, वह क्योंकर पूरा हो। वही भाषा जिसमें आरम्भ में 'बागो-बहार' और 'बैताल-पचीसी' की रचना ही सबसे बड़ी साहित्य-सेवा थी, अब इस योग्य हो गई है कि उसमें शास्त्र और विज्ञान के प्रश्नों की भी विवेचना की जा सके और यह सम्मेलन इस सचाई की स्पष्ट स्वीकृति है।

भाषा बोलचाल की भी होती है और लिखने की भी। बोल-चाल की भाषा तो मीर अम्मन और लल्लूलाल के ज़माने में भी मौजूद थी; पर उन्होंने जिस भाषा की दाग़ बेल डाली, वह लिखने की भाषा थी और वही साहित्य है। बोलचाल से हम अपने क़रीब के लोगों पर अपने विचार प्रकट करते हैं—अपने हर्ष-शोक के भावों का चित्र खींचते हैं। साहित्यकार वही काम लेखनी द्वारा करता है। हाँ, उसके श्रोताओं की परिधि बहुत विस्तृत होती है, और अगर उसके बयान में सचाई है तो शताब्दियों और युगों तक उसकी रचनाएँ हृदयों को प्रभावित करती रहती हैं।

परन्तु मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि जो कुछ लिख दिया जाए, वह सबका सब साहित्य है। साहित्य उसी रचना को कहेंगे, जिसमें कोई सचाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुन्दर हो, और जिसमें दिल और दिमाग़ पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप में उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सचाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गई हों। तिलिस्मात, कहानियों, भूत-प्रेत की कथाओं और प्रेम-वियोग के आख्यानों से किसी ज़माने में हम भले ही प्रभावित हुए हों, पर अब उनमें हमारे लिए बहुत कम दिलचस्पी है। इसके

Scanned with CamScanner

सन्देह नहीं कि मानव-प्रकृति का मर्मज्ञ साहित्यकार राजकुमारों की प्रेम-गाथाओं और तिलिस्माती कहानियों में भी जीवन की सचाइयाँ वर्णन कर सकता है, और सौंदर्य की सृष्टि कर सकता है; परन्तु इससे भी इस सत्य की पुष्टि ही होती है कि साहित्य में प्रभाव उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि वह जीवन की सचाइयों का दर्पण हो। फिर आप उसे जिस चौखटे में चाहें, लगा सकते हैं—चिड़े की कहानी और गुलो-बुलबुल की दास्तान भी उसके लिए उपयुक्त हो सकती है।

साहित्य की बहुत-सी परिभाषाएँ की गई हैं, पर मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा 'जीवन की आलोचना' है। चाहे वह निबंध के रूप में हो, चाहे कहानियों के या काव्य के, उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए।

हमने जिस युग को अभी पार किया है,उसे जीवन से कोई मतलब न था। हमारे साहित्यकार कल्पना की सृष्टि खड़ी कर उसमें मनमाने तिलिस्म बाँधा करते थे। कहीं फ़िसानये अजायब की दास्तान थी, कहीं बोस्ताने ख़याल की और कहीं चंद्रकांता संतति की। इन आख्यानों का उद्देश्य केवल मनोरंजन था और हमारे अद्भुत रस-प्रेम की तृप्ति। साहित्य का जीवन से कोई लगाव है, यह कल्पनातीत था। कहानी, कहानी है, जीवन जीवन; दोनों परस्पर विरोधी वस्तुएँ समझी जाती थीं। कवियों पर भी व्यक्तिवाद का रंग चढ़ा हुआ था। प्रेम का आदर्श वासनाओं को तृप्त करना था और सौंदर्य का आँखों को। इन्हीं शृंगारिक भावों को प्रकट करने में कवि-मंडली अपनी प्रतिभा और कल्पना के चमत्कार दिखाया करती थी। पद्य में कोई नई शब्द-योजना, नई कल्पना का होना दाद पाने के लिए काफ़ी था—चाहे वह वस्तु-स्थिति से कितनी ही दूर क्यों न हो। आशियाना (=घोंसला) और क़फ़स (=पींजरा), बर्क़ (=बिजली) और ख़िरमन की कल्पनाएँ विरह दशा के वर्णन में निराशा और वेदना की विविध अवस्थाएँ, इस खूबी से दिखाई जाती थीं कि सुननेवाले दिल थाम लेते थे और आज भी इस ढंग की कविता कितनी लोकप्रिय है, इसे हम और आप खूब जानते हैं।

निस्संदेह, काव्य और साहित्य का उद्देश्य हमारी अनुभूतियों की तीव्रता को बढ़ाना है; पर मनुष्य का जीवन केवल स्त्री-पुरुष-प्रेम का जीवन नहीं है। क्या वह साहित्य, जिसका विषय शृंगारिक मनोभावों और उनसे उत्पन्न होनेवाली विरह-व्यथा, निराशा आदि तक ही सीमित हो—जिसमें दुनिया की कठिनाइयों से दूर भागना ही जीवन की सार्थकता समझी गई हो, हमारी विचार और भाव सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है? शृंगारिक मनोभाव मानव-जीवन का एक अंग मात्र है और जिस साहित्य का अधिकांश इसी से सम्बन्ध रखता हो, वह उस जाति और उस युग के लिए गर्व करने की वस्तु नहीं हो सकता और न उसकी सुरुचि का ही प्रमाण हो सकता है।

क्या हिंदी और क्या उर्दू—कविता में दोनों की एक ही हालत थी। उस समय साहित्य और काव्य के विषय में जो लोक-रुचि थी, उसके प्रभाव से अलिप्त रहना सहज न था। सराहना और क़द्रदानी की हवस तो हर एक को होती है। कवियों के लिए उनकी रचना ही जीविका का साधन थी और कविता की क़द्रदानी रईसों अमीरों

Scanned with CamScanner

के सिवा और कौन कर सकता है? हमारे कवियों को साधारण जीवन का सामना करने और उसकी सचाइयों से प्रभावित होने के या तो अवसर ही न थे, या हर छोटे-बड़े पर कुछ ऐसी मानसिक गिरावट छायी हुई थी कि मानसिक और बौद्धिक जीवन रह ही न गया था।

हम इसका दोष उस समय के साहित्यकारों पर ही नहीं रख सकते। साहित्य अपने काल का प्रतिबिम्ब होता है। जो भाव और विचार लोगों के हृदयों को स्पंदित करते हैं, वही साहित्य पर भी अपनी छाया डालते हैं। ऐसे पतन के काल में लोग या तो आशिकी करते हैं या अध्यात्म और वैराग्य में मन रमाते हैं। जब साहित्य पर संसार की नश्वरता का रंग चढ़ा हो और उसका एक-एक शब्द नैराश्य में डूबा, समय की प्रतिकूलता के रोने से भरा और शृंगारिक भावों का प्रतिबिम्ब बना हो तो समझ लीजिए कि जाति जड़ता और ह्रास के पंजे में फँस चुकी है और उसमें उद्योग तथा संघर्ष का बल बाक़ी नहीं रहा। उसने ऊँचे लक्ष्यों की ओर से आँखें बन्द कर ली हैं और उसमें से दुनिया को देखने-समझने की शक्ति लुप्त हो गई है।

परंतु हमारी साहित्यिक रुचि बड़ी तेजी से बदल रही है। अब साहित्य केवल मन-बहलाव की चीज नहीं है, मनोरंजन के सिवा उसका और भी कुछ उद्देश्य है। अब वह केवल नायक-नायिका के संयोग-वियोग की कहानी नहीं सुनाता, किन्तु जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है और उन्हें हल करता है। अब वह स्फूर्ति या प्रेरणा के लिए अद्भुत आश्चर्यजनक घटनाएँ नहीं ढूँढ़ता और न अनुप्रास का अन्वेषण करता है, किन्तु उसे उन प्रश्नों से दिलचस्पी है जिनसे समाज या व्यक्ति प्रभावित होते हैं। उसकी उत्कृष्टता की वर्तमान कसौटी अनुभूति की वह तीव्रता है,जिससे वह हमारे भावों और विचारों में गति पैदा करता है।

नीति-शास्त्र और साहित्य-शास्त्र का लक्ष्य एक ही है—केवल उपदेश की विधि में अंतर है। नीति-शास्त्र तर्कों और उपदेशों के द्वारा बुद्धि और मन पर प्रभाव डालने का यत्न करता है, साहित्य ने अपने लिए मानसिक अवस्थाओं और भावों का क्षेत्र चुन लिया है। हम जीवन में जो कुछ देखते हैं या जो कुछ हम पर गुज़रती है, वही अनुभव और चोटें कल्पना में पहुँचकर साहित्य-सृजन की प्रेरणा करती हैं। कवि या साहित्यकार में अनुभूति की जितनी तीव्रता होती है, उसकी रचना उतनी ही आकर्षक और ऊँचे दरजे की होती है। जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममें शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौंदर्य-प्रेम न जागृत् हो,—जो हममें सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह आज हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहलाने का अधिकारी नहीं।

पुराने ज़माने में समाज की लगाम मज़हब के हाथ में थी। मनुष्य की आध्यात्मिक और नैतिक सभ्यता का आधार धार्मिक आदेश था और वह भय या प्रलोभन से काम लेता था,—पुण्य-पाप के मसले उसके साधन थे।

Scanned with CamScanner

अब, साहित्य ने यह काम अपने जिम्मे ले लिया है और उसका साधन सौंदर्य-प्रेम है। वह मनुष्य में इसी सौंदर्य-प्रेम को जगाने का यत्न करता है। ऐसा कोई मनुष्य नहीं, जिसमें सौंदर्य की अनुभूति न हो। साहित्यकार में यह वृत्ति जितनी ही जागृत और सक्रिय होती है, उसकी रचना उतनी ही प्रभावमयी होती है। प्रकृति-निरीक्षण और अपनी अनुभूति की तीक्ष्णता की बदौलत उसके सौंदर्य-बोध में इतनी तीव्रता आ जाती है कि जो कुछ असुन्दर है, अभद्र है, मनुष्यता से रहित है, वह उसके लिए असह्य हो जाता है। उस पर वह शब्दों और भावों की सारी शक्ति से वार करता है। यों कहिए कि वह मानवता, दिव्यता और भद्रता का बाना बाँधे होता है। जो दलित है, पीड़ित है, वंचित है—चाहे वह व्यक्ति हो या समूह,—उसकी हिमायत और वकालत करना उसका फर्ज़ है। उसकी अदालत के सामने वह अपना इस्तग़ासा पेश करता है और उसकी न्याय-वृत्ति तथा सौंदर्य-वृत्ति को जागृत् करके अपना यत्न सफल समझता है।

पर साधारण वकीलों की तरह साहित्यकार अपने मुवक्किल की ओर से उचित-अनुचित सब तरह के दावे नहीं पेश करता, अतिरंजना से काम नहीं लेता, अपनी ओर से बातें गढ़ता नहीं। वह जानता है कि इन युक्तियों से वह समाज की अदालत पर असर नहीं डाल सकता। उस अदालत का हृदय-परिवर्तन तभी सम्भव है जब आप सत्य से तनिक भी विमुख न हों, नहीं तो अदालत की धारणा आपकी ओर से खराब हो जायेगी और वह आपके खिलाफ़ फैसला सुना देगी। वह कहानी लिखता है, पर वास्तविकता का ध्यान रखते हुए; मूर्ति बनाता है, पर ऐसी कि उसमें सजीवता हो और भावव्यंजकता भी—वह मानव-प्रकृति का सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करता है, मनोविज्ञान का अध्ययन करता है और इसका यत्न करता है कि उसके पात्र हर हालत में और हर मौके पर, इस तरह आचरण करें, जैसे रक्त-मांस का बना मनुष्य करता है; अपनी सहज सहानुभूति और सौंदर्य-प्रेम के कारण वह जीवन के उन सूक्ष्म स्थानों तक जा पहुँचता है, जहाँ मनुष्य अपनी मनुष्यता के कारण पहुँचने में असमर्थ होता है।

आधुनिक साहित्य में वस्तु-स्थिति-चित्रण की प्रवृत्ति इतनी बढ़ रही है कि आज की कहानी यथासम्भव प्रत्यक्ष अनुभवों की सीमा के बाहर नहीं जाती। हमें केवल इतना सोचने से ही संतोष नहीं होता कि मनोविज्ञान की दृष्टि से ये सभी पात्र मनुष्यों से मिलते-जुलते हैं; बल्कि हम यह इत्मीनान चाहते हैं कि वे सचमुच मनुष्य हैं और लेखक ने यथासम्भव उनका जीवन-चरित्र ही लिखा है; क्योंकि कल्पना के गढ़े हुए आदमियों में हमारा विश्वास नहीं है, उनके कार्यों और विचारों से हम प्रभावित नहीं होते। हमें इसका निश्चय हो जाना चाहिए कि लेखक ने जो सृष्टि की है, वह प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर की गई है और अपने पात्रों की ज़बान से वह खुद बोल रहा है।

इसीलिए साहित्य को कुछ समालोचकों ने लेखक का मनोवैज्ञानिक जीवन-चरित्र कहा है।

एक ही घटना या स्थिति से सभी मनुष्य समान रूप में प्रभावित नहीं होते। हर आदमी की मनोवृत्ति और दृष्टिकोण अलग है। रचना-कौशल इसी में है कि लेखक

Scanned with CamScanner

जिस मनोवृत्ति या दृष्टिकोण से किसी बात को देखे, पाठक भी उसमें उससे सहमत हो जाय। यही उसकी सफलता है। इसके साथ ही हम साहित्यकार से यह भी आशा रखते हैं कि वह अपनी बहुज्ञता और अपने विचारों की विस्तृति से हमें जागृत् करे, हमारी दृष्टि तथा मानसिक परिधि को विस्तृत करे—उसकी दृष्टि इतनी सूक्ष्म, इतनी गहरी और इतनी विस्तृत हो कि उसकी रचना से हमें आध्यात्मिक आनंद और बल मिले।

सुधार की जिस अवस्था में वह हो, उससे अच्छी अवस्था आने की प्रेरणा हर आदमी में मौजूद रहती है। हममें जो कमजोरियाँ हैं, वह मर्ज़ की तरह हमसे चिपटी हुई हैं। जैसे शारीरिक स्वास्थ्य एक प्राकृतिक बात है और रोग उसका उलटा, उसी तरह नैतिक और मानसिक स्वास्थ्य भी प्राकृतिक बात है और हम मानसिक तथा नैतिक गिरावट से उसी तरह संतुष्ट नहीं रहते, जैसे कोई रोगी अपने रोग से संतुष्ट नहीं रहता। जैसे वह सदा किसी चिकित्सक की तलाश में रहता है, उसी तरह हम भी इस फिक्र में रहते हैं कि किसी तरह अपनी कमज़ोरियों को परे फेंककर अधिक अच्छे मनुष्य बनें। इसीलिए हम साधु-फ़कीरों की खोज में रहते हैं, पूजा-पाठ करते हैं, बड़े-बूढ़ों के पास बैठते हैं, विद्वानों के व्याख्यान सुनते हैं और साहित्य का अध्ययन करते हैं।

और हमारी सारी कमज़ोरियों की जिम्मेदारी हमारी कुरुचि और प्रेम-भाव से वंचित होने पर है। जहाँ सच्चा सौंदर्य-प्रेम है, जहाँ प्रेम की विस्तृति है, वहाँ कमज़ोरियाँ कहाँ रह सकती हैं? प्रेम ही तो आध्यात्मिक भोजन है और सारी कमज़ोरियाँ इसी भोजन के न मिलने अथवा दूषित भोजन के मिलने से पैदा होती हैं। कलाकार हममें सौंदर्य की अनुभूति उत्पन्न करता है और प्रेम की उष्णता। उसका एक वाक्य, एक शब्द, एक संकेत, इस तरह हमारे अन्दर जा बैठता है कि हमारा अन्तः-करण प्रकाशित हो जाता है। पर जब तक कलाकार खुद सौंदर्य-प्रेम से छककर मस्त न हो और उसकी आत्मा स्वयं इस ज्योति से प्रकाशित न हो, वह हमें यह प्रकाश क्योंकर दे सकता है?

प्रश्न यह कि सौंदर्य है क्या वस्तु? प्रकटतः यह प्रश्न निरर्थक-सा मालूम होता है, क्योंकि सौंदर्य के विषय में हमारे मन में कोई शंका-संदेह नहीं। हमने सूरज का उगना और डूबना देखा है, उषा और संध्या की लालिमा देखी है, सुंदर सुंगध भरे फूल देखे हैं, मीठी बोलियाँ बोलनेवाली चिड़ियाँ देखी हैं, कल-कल-निनादिनी नदियाँ देखी हैं, नाचते हुए झरने देखे हैं,—यही सौंदर्य है।

इन दृश्यों को देखकर हमारा अन्तः करण क्यों खिल उठता है? इसलिए कि इनमें रंग या ध्वनि का सामंजस्य है। बाजों का स्वरसाम्य अथवा मेल ही संगीत की मोहकता का करण है। हमारी रचना ही तत्त्वों के समानुपात में संयोग से हुई है, इसलिए हमारी आत्मा सदा उसी साम्य की, सामंजस्य की खोज में रहती है। साहित्य कलाकार के आध्यात्मिक सामंजस्य का व्यक्त रूप है और सामंजस्य सौंदर्य की सृष्टि करता है, नाश

Scanned with CamScanner

नहीं। वह हममें वफादारी, सचाई, सहानुभूति, न्याय प्रियता और समता के भावों की पुष्टि करता है। जहाँ ये भाव हैं, वहीं दृढ़ता है और जीवन है; जहाँ इनका अभाव है, वहीं फूट, विरोध, स्वार्थपरता है—द्वेष, शत्रुता और मृत्यु है। यह बिलगाव और विरोध प्रकृति-विरुद्ध जीवन के लक्षण हैं, जैसे रोग प्रकृति-विरुद्ध आहार-विहार का चिह्न है। जहाँ प्रकृति से अनुकूलता और साम्य है, वहाँ संकीर्णता और स्वार्थ का अस्तित्व कैसे संभव होगा? जब हमारी आत्मा प्रकृति के मुक्त वायु मंडल में पालित-पोषित होती है, तो नीचता-दुष्टता के कीड़े अपने आप हवा और रोशनी से मर जाते हैं। प्रकृति से अलग होकर अपने को सीमित कर लेने से ही यह सारी मानसिक और भावगत बीमारियाँ पैदा होती हैं। साहित्य हमारे जीवन को स्वाभाविक और स्वाधीन बनाता है; दूसरे शब्दों में उसी की बदौलत मन का संस्कार होता है। यही उसका मुख्य उद्देश्य है।

'प्रगतिशील लेखक संघ,' यह नाम ही मेरे विचार से ग़लत है। साहित्यकार या कलाकार स्वभावत: प्रगतिशील होता है। अगर यह उसका स्वभाव न होता, तो शायद वह साहित्यकार ही न होता। उसे अपने अन्दर भी एक कमी महसूस होती है और बाहर भी। इसी कमी को पूरा करने के लिए उसकी आत्मा बेचैन रहती है। अपनी कल्पना में वह व्यक्ति और समाज को सुख और स्वच्छंदता की जिस अवस्था में देखना चाहता है, वह उसे दिखाई नहीं देती। इसलिए, वर्तमान मानसिक और सामाजिक अवस्थाओं से उसका दिल कुढ़ता रहता है। वह इन अप्रिय अवस्थाओं का अन्त कर देना चाहता है, जिससे दुनिया जीने और मरने के लिए इससे अधिक अच्छा स्थान हो जाये। यही वेदना और यही भाव उसके हृदय और मस्तिष्क को सक्रिय बनाए रखता है। उसका दर्द से भरा हृदय इसे सहन नहीं कर सकता कि एक समुदाय क्यों सामाजिक नियमों और रूढ़ियों के बन्धन में पड़कर कष्ट भोगता रहे। क्यों न ऐसे सामान इकट्ठा किए जाएँ कि वह गुलामी और ग़रीबी से छुटकारा पा जाये? वह इस वेदना को जितनी बेचैनी के साथ अनुभव करता है, उतना ही उसकी रचना में ज़ोर और सचाई पैदा होती है। अपनी अनुभूतियों को वह जिस क्रमानुपात में व्यक्त करता है, वही उसकी कला-कुशलता का रहस्य है। पर शायद विशेषता पर ज़ोर देने की ज़रूरत इसलिए पड़ी कि प्रगति या उन्नति से प्रत्येक लेखक या ग्रंथकार एक ही अर्थ नहीं ग्रहण करता। जिन अवस्थाओं को एक समुदाय उन्नति समझ सकता है, दूसरा समुदाय असंदिग्ध अवनति मान सकता है, इसलिए साहित्यकार अपनी कला को किसी उद्देश्य के अधीन नहीं करना चाहता। उसके विचारों में कला मनोभावों के व्यक्तीकरण का नाम है, चाहे उन भावों से व्यक्ति या समाज पर कैसा ही असर क्यों न पड़े।

उन्नति से हमारा तात्पर्य उस स्थिति से है, जिससे हममें दृढ़ता और कर्म-शक्ति उत्पन्न हो, जिससे हमें अपनी दु:खावस्था की अनुभूति हो, हम देखें कि किन अंतर्बाह्य कारणों से हम इस निर्जीवता और ह्रास की अवस्था को पहुँच गए, और उन्हें दूर करने की कोशिश करें।

Scanned with CamScanner

हमारे लिए कविता के वे भाव निरर्थक हैं, जिनसे संसार की नश्वरता का आधिपत्य हमारे हृदय पर और दृढ़ हो जाय, जिनसे हमारे मासिक पत्रों के पृष्ठ भरे रहते हैं, हमारे लिए अर्थहीन हैं अगर वे हममें हरकत और गरमी नहीं पैदा करतीं। अगर हमने दो नव-युवकों की प्रेम-कहानी कह डाली, पर उससे हमारे सौंदर्य-प्रेम पर कोई असर न पड़ा और पड़ा भी तो केवल इतना कि हम उनकी विरह-व्यथा पर रोए, तो इससे हममें कौन-सी मानसिक या रुचि-सम्बन्धी गति पैदा हुई? इन बातों से किसी जमाने में हमें भावावेश हो जाता रहा हो; पर आज के लिए वे बेकार हैं। इस भावोत्तेजक कला का अब जमाना नहीं रहा। अब तो हमें उस कला की आवश्यकता है, जिसमें कर्म का संदेश हो। अब तो हजरते इक़बाल के साथ हम भी कहते हैं—

रम्ज़े हयात जोई ज़ुजदर तपिश मयाबी
रदकुलजुम आरमीदन नंगस्त आबे ज़ूरा।
ब आशियाँ न नशीनम चे लज्जते परवाज,
गहे बशाख़े गुलाम गहे बरलबे जूयम।

(अर्थात्, अगर तुझे जीवन के रहस्य की खोज है तो वह तुझे संघर्ष के सिवा और कहीं नहीं मिलने का—सागर में जाकर विश्राम करना नदी के लिए लज्जा की बात है। आनन्द पाने के लिए मैं घोंसले में कभी बैठता नहीं—कभी फूलों की टहनियों पर, तो कभी नदी-तट पर होता हूँ।)

अत: हमारे पंथ में अहंवाद अथवा अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण को प्रधानता देना वह वस्तु है,जो हमें जड़ता, पतन और लापरवाही की ओर ले जाती है और ऐसी कला हमारे लिए न व्यक्ति रूप में उपयोगी है और न समुदाय-रूप में।

मुझे यह कहने में हिचक नहीं कि मैं चीज़ों की तरह कला को भी उपयोगिता की तुला पर तौलता हूँ। निस्संदेह कला का उद्देश्य सौंदर्यवृत्ति की पुष्टि करना है और वह हमारे आध्यात्मिक आनंद की कुंजी है; पर ऐसा कोई रुचिगत मानसिक तथा आध्यात्मिक आनंद नहीं, जो अपनी उपयोगिता का पहलू न रखता हो। आनंद स्वत: एक उपयोगिता-युक्त वस्तु है और उपयोगिता की दृष्टि से एक वस्तु से हमें सुख भी होता है और दु:ख भी।

आसमान पर छायी लालिमा निस्संदेह बड़ा सुंदर दृश्य है; परंतु आषाढ़ में अगर आकाश पर वैसी लालिमा छा जाए, तो वह हमें प्रसन्नता देनेवाली नहीं हो सकती। उस समय तो हम आसमान पर काली-काली घटाएँ देखकर ही आनंदित होते हैं। फूलों को देखकर हमें इसलिए आनंद होता है कि उनसे फलों की आशा होती है; प्रकृति से अपने जीवन का सुर मिलाकर रहने में हमें इसीलिए आध्यात्मिक सुख मिलता है कि उससे हमारा जीवन विकसित और पुष्ट होता है। प्रकृति का विधान वृद्धि और विकास है और जिन भावों, अनुभूतियों और विचारों से हमें आनंद मिलता है, वे इसी वृद्धि और विकास के सहायक हैं। कलाकार अपनी कला से सौंदर्य की सृष्टि करके परिस्थिति को विकास के लिए उपयोगी बनाता है।

Scanned with CamScanner

परन्तु सौंदर्य भी और पदार्थों की तरह स्वरूपस्थ और निरपेक्ष नहीं, उसकी स्थिति भी सापेक्ष है। एक रईस के लिए जो वस्तु सुख का साधन है, वही दूसरे के लिए दुख का कारण हो सकती है। एक रईस अपने सुरभित सुरम्य उद्यान में बैठकर जब चिड़ियों का कलगान सुनता है, तो उसे स्वर्गीय सुख की प्राप्ति होती है; परन्तु एक दूसरा सज्ञान मनुष्य वैभव की इस सामग्री को घृणित वस्तु समझता है।

बंधुत्व और समता, सभ्यता तथा प्रेम सामाजिक जीवन के आरम्भ से ही, आदर्शवादियों का सुनहला स्वप्न रहे हैं। धर्म-प्रवर्त्तकों ने धार्मिक, नैतिक और आध्यात्मिक बंधनों से इस स्वप्न को सचाई बनाने का सतत, किंतु निष्फल यत्न किया है। महात्मा बुद्ध, हज़रत ईसा, हज़रत मुहम्मद आदि सभी पैग़म्बरों और धर्म-प्रवर्त्तकों ने नीति की नींव पर इस समता की इमारत खड़ी करनी चाही, पर किसी को सफलता न मिली और छोटे-बड़े का भेद जिस निष्ठुर रूप में प्रकट हो रहा है, शायद कभी न हुआ था।

'आजमाये को आजमाना मूर्खता है', इस कहावत के अनुसार यदि हम अब भी धर्म और नीति का दामन पकड़कर समानता के ऊँचे लक्ष्य पर पहुँचना चाहें, तो विफलता ही मिलेगी। क्या हम इस सपने को उत्तेजित मस्तिष्क की सृष्टि समझकर भूल जाएँ? तब तो मनुष्य की उन्नति और पूर्णता के लिए आदर्श ही बाक़ी न रह जायेगा। इससे कहीं अच्छा है कि मनुष्य का अस्तित्व ही मिट जाय। जिस आदर्श को हमने सभ्यता के आरम्भ से पाला है, जिसके लिए मनुष्य ने, ईश्वर जाने कितनी कुरबानियाँ की हैं, जिसकी परिणति के लिए धर्मों का आविर्भाव हुआ, मानव-समाज का इतिहास, जिस आदर्श की प्राप्ति का इतिहास है, उसे सर्वमान्य समझकर, एक अमिट सचाई समझकर, हमें उन्नति के मैदान में कदम रखना है। हमें एक ऐसे नए संगठन को सर्वांङ्गपूर्ण बनाना है, जहाँ समानता केवल नैतिक बंधनों पर आश्रित न रहकर अधिक ठोस रूप प्राप्त कर ले, हमारे साहित्य को उसी आदर्श को अपने सामने रखना है।

हमें सुंदरता की कसौटी बदलनी होगी। अभी तक यह कसौटी अमीरी और विलासिता के ढंग की थी। हमारा कलाकार अमीरों का पल्ला पकड़े रहना चाहता था, उन्हीं की कद्रदानी पर उसका अस्तित्व अवलंबित था और उन्हीं के सुख-दुख, आशा-निराशा, प्रतियोगिता और प्रतिद्वन्द्विता की व्याख्या कला का उद्देश्य था। उसकी निगाह अंत:पुर और बँगलों की ओर उठती थी। झोंपड़े और खँडहर उसके ध्यान के अधिकारी न थे। उन्हें वह मनुष्यता की परिधि के बाहर समझता था। कभी इनकी चर्चा करता भी था तो इनका मजाक उड़ाने के लिए। ग्रामवासी की देहाती वेश-भूषा और तौर-तरीके पर हँसने के लिए, उसका शीन-काफ़ दुरुस्त न होना या मुहाविरों का ग़लत उपयोग उसके व्यंग्यविद्रूप की स्थायी सामग्री थी। वह भी मनुष्य है, उसके भी हृदय है और उसमें भी आकांक्षाएँ हैं,—यह कला की कल्पना के बाहर की बात थी।

कला नाम था और अब भी है संकुचित रूप-पूजा का, शब्दयोजना का, भाव-निबंधन का। उसके लिए कोई आदर्श नहीं है, जीवन का कोई ऊँचा उद्देश्य नहीं

Scanned with CamScanner

है,—भक्ति, वैराग्य, अध्यात्म और दुनिया से किनाराकशी उसकी सबसे ऊँची कल्पनाएँ हैं। हमारे उस कलाकार के विचार से जीवन का चरम लक्ष्य यही है। उसकी दृष्टि अभी इतनी व्यापक नहीं कि जीवन-संग्राम में सौंदर्य का परमोत्कर्ष देखे। उपवास और नग्नता में भी सौंदर्य का अस्तित्व संभव है, इसे कदाचित् वह स्वीकार नहीं करता। उसके लिए सौंदर्य सुंदर स्त्री में है,—उस बच्चोंवाली गरीब रूप-रहित स्त्री में नहीं, जो बच्चे को खेत की मेंड़ पर सुलाए पसीना बहा रही है। उसने निश्चय कर लिया है कि रंगे होंठों, कपोलों और भौंहों में निस्संदेह सुंदरता का वास है,—उसके उलझे हुए बालों, पपड़ियाँ पड़े हुए होंठों और कुम्हलाए हुए गालों में सौंदर्य का प्रवेश कहाँ?

पर यह संकीर्ण दृष्टि का दोष है। अगर उसकी सौंदर्य देखने वाली दृष्टि में विस्तृति आ जाय तो वह देखेगा कि रंगे होंठों और कपोलों की आड़ में अगर रूप-गर्व और निष्ठुरता छिपी है, तो इन मुरझाए हुए होंठों और कुम्हालाए गालों के आँसुओं में त्याग, श्रद्धा और कष्ट-सहिष्णुता है। हाँ, उसमें नफ़ासत नहीं, दिखावा नहीं, सुकुमारता नहीं।

हमारी कला यौवन के प्रेम में पागल है और यह नहीं जानती कि जवानी छाती पर हाथ रखकर कविता पढ़ने , नायिका की निष्ठुरता का रोना रोने या उनके रूप-गर्व और चोंचलों पर सिर धुनने में नहीं है। जवानी नाम है आदर्शवाद का, हिम्मत का, कठिनाई से मिलने की इच्छा का, आत्मत्याग का। उसे तो इक़बाल के साथ कहना होगा—

आज दस्ते जुनूने मन जिब्रील ज़बूं सैदे,
यजदाँ बकमंद आवर ऐ हिम्मते मरदाना।

(अर्थात् मेरे उन्मत्त हाथों के जिब्रील एक घटिया शिकार है! ऐ हिम्मते मरदाना, क्यों न अपनी कमंद में तू खुदा को ही फाँस लाए?)

अथवा

चूं मौज साज़ बजूदम ज़े सैल बेपरवास्त,
गुमाँ मबर कि दरीं बहर साहिले जोयम।

(अर्थात् तरंग की भाँति मेरे जीवन की तरी भी प्रवाह की ओर से बेपरवाह है, यह न सोचो कि इस समुद्र में मैं किनारा ढूँढ़ रहा हूँ।)

और यह अवस्था उस समय पैदा होगी, जब हमारा सौंदर्य व्यापक हो जायेगा, जब सारी सृष्टि उसकी परिधि में आ जायेगी। वह किसी विशेष श्रेणी तक ही सीमित न होगा, उसकी उड़ान के लिए केवल बाग की चहारदीवारी न होगी; किंतु वह वायुमंडल होगा, जो सारे भूमंडल को घेरे हुए है। तब कुरुचि हमारे लिये सह्य न होगी, तब हम उसकी जड़ खोदने के लिए कमर कसकर तैयार हो जाएँगे। हम जब ऐसी व्यवस्था को सहन न कर सकेंगे कि हजारों आदमी कुछ अत्याचारियों की गुलामी करें,

Scanned with CamScanner

तभी हम केवल कागज के पृष्ठों पर सृष्टि करके ही संतुष्ट न हो जाएँगे; किंतु उस विधान की सृष्टि करेंगे, जो सौंदर्य, सुरुचि, आत्मसम्मान और मनुष्यता का विरोधी न हो।

साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है,—उसका दरजा इतना न गिराइए। वह देश-भक्ति और राजनीति के पीछे चलनेवाली सचाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलनेवाली सचाई है।

हमें अक्सर यह शिकायत होती है कि साहित्यकारों के लिए समाज में कोई स्थान नहीं,—अर्थात् भारत के साहित्यकारों के लिए। सभ्य देशों में तो साहित्यकार समाज का सम्मानित सदस्य है और बड़े-बड़े अमीर और मंत्रि-मंडल के सदस्य उससे मिलने में अपना गौरव समझते हैं। परन्तु हिन्दुस्तान तो अभी मध्य-युग की अवस्था में पड़ा हुआ है। यदि साहित्यकार ने अमीरों के याचक बनने को जीवन का सहारा बना लिया हो, और उन आन्दोलनों, हलचलों और क्रांतियों से बेखबर हो, जो समाज में हो रही हैं, अपनी ही दुनिया बनाकर उसमें रोता और हँसता हो, तो इस दुनिया में उसके लिए जगह न होने में कोई अन्याय नहीं है। जब साहित्यकार बनने के लिए अनुकूल रुचि के सिवा और कोई क़ैद नहीं रही,—जैसे महात्मा बनने के लिए किसी प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता नहीं, आध्यात्मिक उच्चता ही काफी है,—तो जैसे महात्मा लोग दर-दर फिरने लगे, उसी तरह साहित्यकार भी लाखों निकल आए।

इसमें शक नहीं है कि साहित्यकार पैदा होता है, बनाया नहीं जाता; पर यदि हम शिक्षा और जिज्ञासा से प्रकृति की इस देन को बढ़ा सकें तो निश्चय ही हम साहित्य की अधिक सेवा कर सकेंगे। अरस्तू ने और दूसरे विद्वानों ने भी साहित्यकार बननेवालों के लिए कड़ी शर्तें लगायी हैं; और उनकी मानसिक; नैतिक, आध्यात्मिक और भावगत सभ्यता तथा शिक्षा के लिए सिद्धान्त और विधियाँ निश्चित कर दी गई हैं। मगर आज तो हिंदी में साहित्यकार के लिए प्रवृत्ति मात्र अलम् समझी जाती है और किसी प्रकार की तैयारी की उसके लिए आवश्यकता नहीं। वह राजनीति, समाज-शास्त्र या मनोविज्ञान से सर्वथा अपरिचित हो, फिर भी वह साहित्यकार है।

साहित्यकार के सामने आजकल जो आदर्श रखा गया है, उसके अनुसार ये सभी विद्याएँ उसके विशेष अंग बन गई हैं और साहित्य की प्रवृत्ति अहंवाद या व्यक्तिवाद तक परिमित नहीं रही, बल्कि वह मनोवैज्ञानिक और सामाजिक होती जाती है। अब वह व्यक्ति को समाज से अलग नहीं देखता, किंतु उसे समाज के एक अंग-रूप में देखता है! इसलिए नहीं कि वह समाज पर हुकूमत करे, उसे अपनी स्वार्थ-साधना का औजार बनाए—मानो उसमें और समाज में सनातन शत्रुता है—बल्कि इसलिए कि समाज के अस्तित्व के साथ उसका अस्तित्व क़ायम है और समाज से अलग होकर उसका मूल्य शून्य के बराबर हो जाता है।

Scanned with CamScanner

हममें से जिन्हें सर्वोत्तम शिक्षा और सर्वोत्तम मानसिक शक्तियाँ मिली हैं, उन पर समाज के प्रति उतनी ही जिम्मेदारी भी है। हम उस मानसिक पूँजीपति को पूजा के योग्य न समझेंगे, जो समाज के पैसे से ऊँची शिक्षा प्राप्त कर उसे शुद्ध स्वार्थ-साधन में लगाता है। समाज से निजी लाभ उठाना ऐसा काम है, जिसे कोई साहित्यकार कभी पसंद न करेगा। उस मानसिक पूँजीपति का कर्तव्य है कि वह समाज के लाभ को अपने निज के लाभ से अधिक ध्यान देने योग्य समझे—अपनी विद्या और योग्यता से समाज को अधिक लाभ पहुँचाने की कोशिश करे। वह साहित्य के किसी भी विभाग में प्रवेश क्यों न करे—उसे उस विभाग से विशेषत: और सब विभागों से सामान्यत: परिचय हो।

अगर हम अंतर्राष्ट्रीय साहित्यकार-सम्मेलनों की रिपोर्ट पढ़ें तो हम देखेंगे कि ऐसा कोई शास्त्रीय, सामाजिक, ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक प्रश्न नहीं है, जिस पर उनमें विचार-विनिमय न होता हो। इसके विरुद्ध, अपनी ज्ञान-सीमा को देखते हैं, तो अपने अज्ञान पर लज्जा आती है। हमने समझ रखा है कि साहित्य-रचना के लिए आशुबुद्धि और तेज कलम काफी है। पर यही विचार हमारी साहित्यिक अवनति का कारण है। हमें अपने साहित्य का मान-दंड ऊँचा करना होगा, जिसमें वह समाज की अधिक मूल्यवान् सेवा कर सके; जिसमें समाज में उसे वह पद मिले, जिसका वह अधिकारी है; जिसमें वह जीवन के प्रत्येक विभाग की आलोचना-विवेचना कर सके, और हम दूसरी भाषाओं तथा साहित्यों का जूठा खाकर ही संतोष न करें, किन्तु खुद भी उस पूँजी को बढ़ाएँ।

हमें अपनी रुचि और प्रवृत्ति के अनुकूल विषय चुन लेने चाहिए और विषय पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना चाहिए। हम जिस आर्थिक अवस्था में जिन्दगी बिता रहे हैं, उसमें यह काम कठिन अवश्य है; पर हमारा आदर्श ऊँचा रहना चाहिए। हम पहाड़ की चोटी तक न पहुँच सकेंगे, तो कमर तक तो पहुँच ही जाएँगे, जो जमीन पर पड़े रहने से कहीं अच्छा है। अगर हमारा अंतर प्रेम की ज्योति से प्रकाशित हो और सेवा का आदर्श हमारे सामने हो, तो ऐसी कोई कठिनाई नहीं, जिस पर हम विजय न प्राप्त कर सकें।

जिन्हें धन-वैभव प्यारा है, साहित्य-मंदिर में उनके लिए स्थान नहीं है। यहाँ तो उन उपासकों की आवश्यकता है, जिन्होंने सेवा को ही अपने जीवन की सार्थकता मान लिया हो, जिनके दिल में दर्द की तड़प हो और मुहब्बत का जोश हो। अपनी इज्जत तो अपने हाथ है। अगर हम सच्चे दिल से समाज की सेवा करेंगे तो मान, प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि सभी हमारे पाँव चूमेगी। फिर मान प्रतिष्ठा की चिंता हमें क्यों सताए? और उसके न मिलने से हम निराश क्यों हों? सेवा में जो आध्यात्मिक आनंद है, वही हमारा पुरस्कार है—हमें समाज पर अपना बड़प्पन जताने, उस पर रोब जमाने की हवस क्यों हो? दूसरों से ज्यादा आराम के साथ रहने की इच्छा भी हमें क्यों सताए? हम अमीरों की श्रेणी में अपनी गिनती क्यों कराएँ? हम तो समाज के झंडा लेकर चलनेवाले सिपाही हैं और सादी जिन्दगी के साथ ऊँची निगाह हमारे जीवन का लक्ष्य

Scanned with CamScanner

है। जो आदमी सच्चा कलाकार है, वह स्वार्थमय जीवन का प्रेमी नहीं हो सकता। उसे अपनी मन:तुष्टि के लिए दिखावे की आवश्यकता नहीं—उससे तो उसे घृणा होती है। वह तो इक़बाल के साथ कहता है—

मर्दुम आज़ादम आगूना सायूरम कि मन,
मीतवाँ कुश्तव येक जामे जुलाले दीगरी।

(अर्थात् मैं आज़ाद हूँ और इतना हयादार हूँ कि मुझे दूसरों के निथरे हुए पानी के एक प्याले से मारा जा सकता है।)

हमारी परिषद् ने कुछ इसी प्रकार के सिद्धांतों के साथ कर्मक्षेत्र में प्रवेश किया है। साहित्य का शराब-कबाब और राग-रंग का मुखापेक्षी बना रहना उसे पसंद नहीं। वह उसे उद्योग और कर्म का संदेश-वाहक बनाने का दावेदार है। उसे भाषा से बहस नहीं। आदर्श व्यापक होने से भाषा अपने आप सरल हो जाती है। भाव-सौंदर्य बनाव-सिंगार से बेपरवाही दिखा सकता है। जो साहित्यकार अमीरों का पैंड़ जोहनेवाला है, वह रईसी रचना-शैली स्वीकार करता है; जो जन-साधारण का है, वह जन-साधारण की भाषा में लिखता है। हमारा उद्देश्य देश में ऐसा वायुमंडल उत्पन्न कर देना है, जिसमें अभीष्ट प्रकार का साहित्य उत्पन्न हो सके और पनप सके। हम चाहते हैं कि साहित्य-केन्द्रों में हमारी परिषदें स्थापित हों और वहाँ साहित्य की रचनात्मक प्रवृत्तियों पर नियमपूर्वक चर्चा हो, नियम पढ़े जाएँ, बहस हो, आलोचना-प्रत्यालोचना हो। तभी वह वायुमंडल तैयार होगा। तभी साहित्य में नए युग का आविर्भाव होगा।

हम हरएक सूबे में हरएक ज़बान में ऐसी परिषदें स्थापित कराना चाहते हैं जिसमें हरएक भाषा में अपना संदेश पहुँचा सकें। यह समझना भूल होगी कि यह हमारी कोई नई कल्पना है। नहीं, देश के साहित्य-सेवियों के हृदयों में सामुदायिक भावनाएँ विद्यमान हैं। भारत की हरएक भाषा में इस विचार के बीज प्रकृति और परिस्थिति ने पहले से बो रखे हैं, जगह-जगह उसके अँखुए भी निकलने लगे हैं। उसको सींचना, उसके लक्ष्य को पुष्ट करना हमारा उद्देश्य है।

हम साहित्यकारों में कर्मशक्ति का अभाव है। यह एक कड़वी सचाई है; पर हम उसकी ओर से आँखें नहीं बन्द कर सकते। अभी तक हमने साहित्य का जो आदर्श अपने सामने रखा था; उसके लिए कर्म की आवश्यकता न थी। कर्माभाव ही उसका गुण था; क्योंकि अवसर कर्म अपने साथ पक्षपात और संकीर्णता को भी लाता है। अगर कोई आदमी धार्मिक होकर अपनी धार्मिकता पर गर्व करे तो इससे कहीं अच्छा है कि वह धार्मिक न होकर 'खाओ-पियो मौज करो' का क़ायल हो। ऐसा स्वच्छंदाचारी तो ईश्वर की दया का अधिकारी हो भी सकता है; पर धार्मिकता का अभिमान रखनेवाले के लिए सम्भावना नहीं।

जो हो, जब तक साहित्य का काम केवल मन-बहलाव का सामान जुटाना, केवल लच्छेदार गा-गाकर सुलाना, केवल आँसू बहाकर जी हलका करना था, तब तक इसके

लिए कर्म की आवश्यकता न थी। वह एक दीवाना था, जिसका गम दूसरे खाते थे; मगर हम साहित्य को केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं समझते। हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सचाइयों का प्रकाश हो—जो हममें गति और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं; क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।[१]

■

Scanned with CamScanner

उसका जमकर प्रतिवाद भी किया है।

अथवा

निराला की प्रगति-गामी चेतना को रेखांकित कीजिए।

उत्तर:- इसमें दो राय नहीं कि छायावादी कवियों में निराला की प्रगति-चेतना काफी प्रखर और प्रभावशाली थी। महराज शिवाजी का पत्र सरीखे कुछ एक कविताओं में उनकी प्रगति-चेतना पर प्रश्न-चिह्न जरूर लगे हैं, क्योंकि इस कविता की रंगत कुछ-कुछ साम्प्रदायिक और कुछ-कुछ जातिवादी हो गई है। किंतु निराला के घोषित विचार और उनके कर्म इस कविता में निहित विचारों से बिल्कुल उलट हैं। निराला के जबर्दस्त प्रशंसक और प्रखर आलोचक डा. रामविलास शर्मा भी इस कविता को अपवाद की संज्ञा देकर मौन हो जाते है।

सर्वप्रथम तो रीतिकालीन कविता का पुरजोर विरोध ही उनकी प्रगति-चेतना को रेखांकित कर देता है। इतना ही नहीं चेतनायुक्त बनाता है। उन्होंने पुण्य को परिभाषित करते हुए अपने एक निबंध में स्पष्ट रूप से लिखा है - हम पुण्य उसे ही मानते हैं जिसमें अधिक संख्यक मनुष्यों को लाभ हो, जिससे वे सुखी हों।

निराला के साहित्य में यथार्थ जीवन की धुंधली अस्पष्ट कल्पना नहीं है, बल्कि बहुत ही स्पष्ट

Scanned with CamScanner

और वैसे रूप हमें देखने को मिलता है। इस यथार्थ जीवन के दुखी और संघर्षरत कवि हैं, उनके प्रतिक्रियावादी आलोचक हैं, उसे हतोत्साहित करने वाले मित्र हैं, उनके अभावों के कारण अकालमृत्यु का ग्रास बनने वाली उनकी युवा सुपुत्री सरोज है, दाने-दाने को मोहताज भिक्षुक हैं, बंदरों के लिए खिलाने वाले चित्र हैं, पत्थर तोड़ती मजदूर स्त्री है। यह सब कुछ है और इनकी ओर निराला तटस्थ नहीं हैं, उनकी सक्रिय सहानुभूति दुख सहनेवालों के साथ है, उनका आक्रोश दुखियों को सताने वालों पर है।

निराला जब प्रतिरोध की बात कहते है तब निष्क्रिय प्रतिरोध की नहीं, वह अन्याय की सक्रिय प्रतिरोध करने का आह्वान करते हैं। उनके राम शक्ति की साधना करते हैं, शस्त्र लेकर रावण से युद्ध करते हैं। उनका बादल आसमान छूने वालों की स्पर्धा चूर कर देता है।

"अशनिपात से शासित उन्नतम शतशत वीर
क्षत-विक्षत हत अचल शरीर,
गगन स्पर्शी स्पर्दाधीर।"

निराला जीवन संघर्ष से डरने वालों को ललकारते हैं -

जीवन की तरी खेल दे रे
जल की उतरल तरंगों पर।

निराला की कविता अपने सत्य से पाठक को इसलिए प्रभावित करती है कि कवि ने संघर्ष का स्वरन नहीं देख वरन, अपने जीवन में प्रतिक्षण उसका अनुभव किया है। 'सरोज-स्मृति' में हम उनके जीवन-संघर्ष का चित्र देखते है। चारों ओर से प्रहार होने पर कवि भविष्य में अपना विश्वास दृढ़ रखे हुए उसका सामना करते हैं। अपने साहित्यक कर्मों से ही वह अपनी स्वर्गीया कन्या का तर्पण करते हैं। तुलसीदास में उन्होंने रामचरितमानास के कवि के मानसिक संघर्ष का चित्रण किया है। 'राम की शक्तिपूजा' में राम पहले रावण से पराजित होते हैं क्योंकि शक्ति रावण की ओर है। शक्ति की उपासना करके ही राम इस योग्य होते है कि वह तमोगुण के प्रतीक रावण पर विजय प्राप्त कर सकें। पराजय का क्षोभ, अभिशाप की पीड़ा फिर भी साधना के लिए प्रयास और अंतिम जीत में विश्वास। निराला के जीवन-दर्शन का अन्तस इन्हीं कोमल-कठोर मानवीय सूत्री से रचा गया है। प्रगति-चेतना की अनुपस्थिति में यह काव्य-दृष्टि आ ही नही सकती थी।

सामाजिक यथार्थ और प्रगतिशील काव्य दृष्टि का चित्र निराला के गद्य साहित्य में और भी विशदता के साथ रेखाओं और रंगों की और भी सजीवता के साथ मिलता है। इस गद्य साहित्य को पढ़कर यह स्पष्ट हो जाता है कि निराला की वेदना के मूल स्त्रोत क्या है? उनका कथा साहित्य भारत पर अंग्रजी राज्य की कटु आलोचना है, जनता की दरिद्रता और दुखी जीवन की तस्वीरें सभ्य अंग्रेजी शासन पर सबसे अच्छी टिप्पणी है। साथ ही यह साहित्य भारतीय रूढ़िवाद की खरी आलोचना करता है। विशेष रूप से वह जाति-प्रथा के खामियों, समाज में उँच-नीच क भेद कायम रखने वालों की असलियत जाहिर कर देता है। वह उनके उपर से धर्म के लबादे उतार फेकता है और उनका मानव द्रोही रूप प्रकट कर देता है।

देवी और चातुरी चमार रूढ़िवादी समाज के ऊपरी दिखावे और भीतरी सड़ांध का भेद प्रकट करता है। धर्म से नहीं विवाह, पारिवारिक जीवन, नैतिक मूल्य, जहाँ भी मनुष्य चुरंगी नीति बरतता है, निराला उसे आधा कर रख देते हैं।

निराला क्रांतिकारी कवि हैं। शक्ति का उपासक कवि चुपचाप अन्यास कैसे सह सकता है ? उन्होंने अपनी कविता में सामाजिक तत्वों का भी उल्लेख किया है। समाज में बड़े कहलाने वालों को क्रांति से प्रसन्नता नहीं होती। आतंक का सहारा लेने पर भी उन्हें भय से मुक्ति नहीं मिलती-

रूद्ध कोष, है क्षुब्ध तोष,
आंगना अंग से लिपट भी

Scanned with CamScanner

आतंक अंक पर कांप रहे
धनी, वज्र-गर्जन से बादल
त्रस्त नयन मुख ठांप रहे है।

क्रांति से प्रसन्नता होती है साधरण जन को

"हँसते हैं छोट पौधे -----
शस्त्र आपार।"

भारतीय जनता का बहुसंख्य किसान हैं। इनकी दशा में आमूल परिवर्तन किए बिना देश की दशा सुधर नहीं सकती।

क्रांति की बाट जोहने वाले यही किसान हैं-

"जीर्ण बहु है, शीर्ष शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विरलव के वीर।
चूस लिया है उसका सार
हाड़ मात्र ही है आधार
ऐ जीवन के पारावार।"

प्रेमचंद के समान भारतीय साहित्य के लिए निराला का यह युगांतकारी महत्व है कि उन्होंने देश की स्वाधीनता आंदोलन में किसानों की भूमिका के महत्व को समझा और राजनीतिक नेताओं की तुलना में उसे ज्यादा स्पष्टता से जनता के सामने रखा। डा. रामविलास शर्मा के शब्दों में "नये भाव थे जो सन् 20-30 के भारतीय समाज को आंदालित कर रहे थे। निराला के साहित्य में विदेशी साम्राज्यवाद और सदियों से चले आते हुए घरेलू रूढ़िवाद के विरूद्ध कसमसाती हुई जनता की नई चेतना प्रतिबिंबित हुई।"

Scanned with CamScanner